P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-5* (Part-1) August- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

शास्त्रीय संगीत के प्राण तत्व–शास्त्रीय वाद्य

मोनिका दीक्षित
विभागाध्यक्ष,
संगीत विभाग,
किशोरी रमण महिला
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मथुरा

सारांश

शास्त्रीय संगीत हमारे देश की सांस्कृतिक धरोहर है। इसका प्रभाव सर्वव्यापी है। शास्त्रीय संगीत में अलौकिक शक्ति है। फिल्म संगीतकार नौशाद के शब्दों में –''हमारा शास्त्रीय संगीत इबादत है, विरासत है, खिदमत है।'' शास्त्रीय संगीत में स्वर–ताल की साधना एवं कल्पना की विविधता पर ध्यान दिया जाता है। इस संगीत में कुछ विशेष नियमों का पालन करना होता है। विशिष्ट साजिन्दे शास्त्र की विविध पेचीदगियों का प्रयोग करते हुऐ भी अपने वाद्यों की स्वर लहरियों की समरसता को श्रोताओं तक पहुंचाना नहीं भूलते। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में पखावज व तबला प्रमुख अवनद्ध वाद्य हैं। इसी प्रकार कर्नाटक शास्त्रीय संगीत में मुख्य रूप से मृदंगम् और साथ में प्रायः घटवाद्यम् और खंजीरा (खंजड़ी) भी बजाए जाने का प्रचलन है।

मुख्य शब्द : शास्त्र, शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय वाद्य, हिन्दुस्तानी वाद्य, कर्नाटक के वाद्य, तत् सुषिर, घन अवनद्ध।

प्रस्तावना

शास्त्रीय संगीत का तात्पर्य मर्यादित एवं नियमों से बाधित संगीत है जो निश्चित परम्परा के साथ प्रस्तुत किया जाता है। यह हमारे देश की सांस्कृतिक धरोहर है। इसने संगीत शास्त्र की अनेक विधाओं को मूर्तरुप प्रदान किया है। इसका प्रभाव सर्वव्यापी है। स्वर सम्राट तानसेन ने अपने संगीत के प्रभाव से पत्थर को पानी करके यह साबित कर दिया था कि शास्त्रीय संगीत में अलौकिक शक्ति है। फिल्म संगीतकार नौशाद के शब्दों में –''हमारा शास्त्रीय संगीत इबादत है, विरासत है, खिदमत है।''

शास्त्रीय संगीत के प्रेरणा स्त्रोत, व्यक्ति और शास्त्र है। यह संगीत वैयक्तिक साधना का प्रतीक है। शास्त्रीय संगीत में स्वर–ताल की साधना एवं कल्पना की विविधता पर ध्यान दिया जाता है। शास्त्रीय संगीत का अपना निजी शास्त्र होता है। यह संगीत राग प्रधान है। राग के कुछ निश्चित स्वर होते हैं, जिनका स्थान निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त स्वरों का चलन, वादी–सम्वादी, उत्तरांग पूर्वांग इत्यादि सभी कुछ परम्परागत होता है।

इस संगीत में कुछ विशेष नियमों का पालन करना होता है। राग के नियमानुसार ग्रह, अंश, स्वर या वादी–संवादी स्वर के अनुसार राग का विस्तार करना, राग की प्रकृति के अनुसार गेय रचनाओं का गायन करना, राग की प्रकृति के ही अनुसार गीत रचना में ताल का चयन करना तथा राग के स्वरूप को बनाये रखना आदि विशेषताएं शास्त्रीय संगीत के नियमों के अन्तर्गत आती हैं।

शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत प्राचीन काल में जाति, प्रबंध, रूपक आदि गाये जाते थे। इसके बाद ध्रुवपद गायन का प्रचलन हुआ, परंतु आज ख्याल–गायन प्रचार में अधिक है। शास्त्रीय संगीत के सरलीकरण की दृष्टि से ठुमरी, टप्पा, दादरा, गज़ल, भजन–प्रभृति गायन शैलियों को वर्तमान समय में अर्धशास्त्रीय संगीत की संज्ञा दी जाती है।

अध्ययन क्षेत्र

विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से शास्त्रीय संगीत हमारी सांस्कृतिक विरासत का अनमोल रत्न है। यह संगीत इतना सुसम्पन्न व विस्तृत है कि संसार के प्रत्येक क्षेत्र का संगीत भारतीय सुर–सागर का ऋणी है। विशिष्ट साजिन्दे अपने शास्त्रीय ढंग से शास्त्रीय वादन से भारतीय जनता को क्या, विदेशी जनता को भी रसप्लावित कर देते है। इसका कारण यही है कि वे शास्त्र की विविध पेचीदगियों का प्रयोग करते हुए भी अपने वाद्यों की स्वर लहरियों की समरसता को श्रोताओं तक पहुंचाना नहीं भूलते। काल के प्रवाह के साथ ही अनेक शास्त्रीय वाद्य नष्ट हो गये, अनेक कुछ विशिष्ट परिवर्तन के साथ प्रचलित हुए और अनेक आज भी अपने परम्परागत रुप में कायम है। ऐसे ही कुछ शास्त्रीय वाद्यों का परिचय इस शोध पत्र में कराने का प्रयास किया है।

साहित्यावलोकन

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में पखावज व तबला प्रमुख अवनद्ध वाद्य हैं। ध्रुवपद शैली में वीणा, सुरसिंगार आदि ततवाद्यों के साथ पखावज बजाया जाता है। ख्याल, टप्पा, तराना, चतुरंग इत्यादि शास्त्रीय और ठुमरी, दादरा आदि उपशास्त्रीय संगीत के साथ सितार, सरोद आदि ततवाद्य तथा कथक नृत्य के साथ तबला बजाने की प्रथा है। इसके अतिरिक्त भक्ति संगीत के साथ समय–समय पर पखावज, खोल, ढ़ोलक या तबला बजाने की प्रथा भी रही है।

इसी प्रकार कर्नाटक शास्त्रीय संगीत में मुख्य रूप से मृदंगम् और साथ में प्रायः घटवाद्यम् और खंजीरा (खंजड़ी) भी बजाए जाने का प्रचलन है। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में संगीत की विभिन्न विधाओं के साथ दिंडिमा (तबुला), तबिल, त्रिमुखवाद्यम् व पंचमुखवाद्यम् इत्यादि अवनद्ध वाद्य बजाए जाने की प्रथा है। बंगाल में वैष्णव कीर्तन की परंपरा में 'खोल' नामक 'मृदंग' विशेष रूप से बजाए जाने की प्रथा है। इसी प्रकार मणिपुरी नृत्य व गान के साथ 'खोल' जैसा ही 'पुंग' नामक 'मृदंग' बजाए जाने की प्रथा है।

तत् वाद्य

तानपुरा (तबूंरा) – "मुरली इक उमंग इक संबुस, इक रबाब भाँति न सों बजावैं"

आदि सारा. २८८८

प्रचलित 'तानपुरा' शब्द को 'तंबूरा' शब्द का अपभृष्ट रूप कहा जा सकता है। कहते हैं तुंबरू नामक गंधर्व द्वारा इस वाद्य का अविष्कार किया गया था, इसीलिए उस गंधर्व के नाम पर इसे 'तंबूरा' कहा गया। इसके उपयुक्त तूम्बे का घेरा कम से कम ४० इंच व अधिक से अधिक ६०–६२ इंच का होता है।

इसराज

इसराज के दण्ड की बनावट सादे सितार के समान ही होती है। डाँड़ का ऊपरी भाग, जहाँ मुख्य तारों की चार खूटियाँ रहती हैं, प्रायः सितार के समान ही होता है। इसकी लम्बाई प्रायः एक गज होती है। इसकी तबली चमड़े से मढ़ी हुई होती है। इसके प्रधान चार तार ताँत या धातु निर्मित होते हैं। तरब के तार पंद्रह तक होते हैं तथा सोलह से उन्नीस तक सारिकाएँ होती हैं। यह सितार की भाँति ही बजाया जाता है।

दिलरूबा

इसराज के रूप में साधारण परिवर्तन करके दिलरूबा वाद्य बनाया गया है। इसका दण्ड इसराज़ के दण्ड की अपेक्षा लम्बाई में कुछ कम है। वर्तमान समय में दिलरूबा तथा इसराज के मुख्य तारों के लिए लकड़ी की खूँटियों के स्थान पर तार कसने की इंगलिश चाबियों का प्रयोग किया जाता है।

वीणा

वीणा भारत का प्राचीन वाद्य है, इसका वर्णन तैत्रीय संहिता (६,१, ४, १) काठक संहिता (३४, ४) और मैत्रायणी संहिता (३, ६, ८) में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण (३, २, ४६, १३, ५, १) में शततंत्री वीणा का वर्णन आया है। संगीत रत्नाकर में वीणा के दस भेद मानें हैं, जबकि संगीत पारिजात में वीणा के आठ भेद लिखे हैं। अष्ठछाप के कवियों नें वीणा का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है, लेकिन वीणा के भेद कहीं पर भी दिखाई नहीं देते हैं। यद्यपि किन्नरी व पिनाक का उल्लेख है लेकिन किन्नरी का अर्थ यहाँ पर झांझ, झालरी, किन्नरी के प्रसंग में एक ताल देने वाला घन वाद्य है।

रूद्रवीणा

रूद्र वीणा में स्थापित एक सप्तक में बारह स्वर–स्थानों के कारण भारतीयों ने ग्यारह रूद्र तथा एक महारूद्र के दर्शन किये। इसीलिए इस वीणा को रूद्रवीणा कहा जाने लगा। कुछ काल के पश्चात् इस रूद्र वीणा के अनेक रूप भेद प्रचलित हुए किंतु इन सभी में दो रूपों का प्रचार विशेष रूप से हुआ जिन्हें सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में क्रमशः सरस्वती वीणा तथा तंजौरी वीणा कहा जाने लगा।

बेला या बायोलिन

बेला, फिडल या बायोलिन आदि पाश्चात्य संज्ञाओं से ऐसा लगता है जैसे यह वाद्य पश्चिम से भारत में आया। किंतु पौराणिक हस्तस्कंध वीणा का संशोधित तथा परिवर्तित रूप ही बायोलिन है। वर्तमान में इसे भारतीय संगीत में संगति वाद्य के अतिरिक्त स्वतंत्र वादन–वाद्य के रूप में भी अपनाया गया है।

कुछ विद्वानों का मत है कि १५६३ ई. में वेनिस नगर के एक ग्रामीण "लीनारोनी" ने "टेनर वाइलन" बनाया था और इटली के कलाकारों ने टेनर वायलिन में कुछ परिवर्तन करके वायलिन को विकसित किया। वायलिन पर प्रत्येक प्रकार के राग आलाप, जोड़ आलाप, ख्याल, ठुमरी, तान, पल्टें और धुनें अच्छी प्रकार बजाईं जाती हैं।

सितार

इस वाद्य की बनावट में मुलतान में निर्मित तून की लकड़ी का अधिक प्रयोग किया जाता है। तून की लकड़ी के स्थान पर सागवान की लकड़ी भी प्रयोग में लायी जाती है। इस वाद्य के तीन आकार पाये जाते हैं, छोटा, मध्यम तथा बड़ा।

सितार दो प्रकार के होते हैं – एक वह जिसमें मुख्य तारों के अतिरिक्त 'तरफ' के तार नहीं होते हैं, इन्हें सादा सितार कहते हैं। दूसरे वे जिनमें मुख्य तारों के साथ 'तरफ' के तार भी होते हैं। इन्हें 'तरफदार' सितार कहते हैं। यह सादे सितार की अपेक्षा कुछ बड़ा होता है। इसमें सजावटी काम अधिक रहता है।

स्वर बहार

यह एक बड़ा सितार है जो सितार की अपेक्षा लगभग दुगना बड़ा होता है। इसके आकार के अनुरूप ही तारों की मोटाई भी बढ़ जाती है। इसका प्रयोग आलाप जोड़ झाला के लिए होता है।

स्वर मंण्डल

इस वाद्य का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है यथा –

"मदन भेरी अरू राय गिड्गिड़ी, सुरमण्डल झनकार"

– सारावली २८६५

"सुरमण्डल, डफ, झांझ, ताल अस बाजत मधुर मृदंग"

– कीर्तन संग्रह भाग २

"सुर मण्डल, पिनाक, अरू महुवरि, जलतरंग मन मोहे।"

– कृष्णदास

प्राचीन काल में इसे शरमंडल कहते थे जैसा की "यतिमान पाद खंड" में लिखा है। स्वरमंडल में लगभग ३५ तार होते हैं। इसका आकार छोटा व बड़ा दोनों प्रकार का होता है। प्रायः इसकी लम्बाई तीन फुट, चौड़ाई ड़ेढ़ फुट व ऊँचाई सात इंच तक होती है। आकार प्रायः पाँच कोंण का होता है। पहले इसमें लकड़ी की खूंटियाँ रहती थीं किंतु अब धातु की रहती हैं। पाश्चात्य संगीत का प्यानों वाद्य हमारे यहाँ के स्वरमंड़ल का ही परिष्कृत रूप है।

कल्लिनाथ मे 'संगीत रत्नाकर' की टीका करते हुए लिखा है कि शारंगदेव द्वारा वर्णित मत्तकोकिला वीणा ही स्वर मण्डल है।

"मत्तकोकिलैव लोके स्वरमण्डलमित्युच्यते।

ताऊस

ताऊस अरबी भाषा का शब्द है और अरबी एवं फारसी दोनों में ही मोर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस वाद्य का आधा भाग मयूर की आकृति का होता है। इसीलिए इसे ताऊस नाम दिया गया है। भारत के अन्य भागों की अपेक्षा पंजाब में यह अधिक लोकप्रिय था और सिख कीर्तन में विशेषकर संगत वाद्य के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। 'गुरमत संगीत' के प्रथम भाग में पटियाला दरबार के भाई काहन सिंह रागी को ताऊस वाद्य का निर्माता तथा प्रचारक बताया गया है। इसमें मुख्य चार तार और अठारह तरवें होती थीं जो राग के स्वरों के अनुसार मिलाई जाती थीं। डांड पर परदे बंधे होते थे। इसे बायें हाथ की अंगुलि से तार दबाकर, दाहिने हाथ से गज द्वारा ध्वनी उत्पन्न की जाती थी।

सरोद

सरोद का सम्पूर्ण शरीर मुख्य खूँटियों के लगनें वाले स्थान को छोड़ कर एक ही लकड़ी के कुंदे से बनाया जाता है। इसकी लकड़ी सागौन, तुन्न, टीक आदि की होती हैं। इसका आकार प्राचीन चित्रा–वीणा, मध्यकालीन रबाब तथा १६वीं शताब्दी के सुरसिंगार से मिलता हुआ होता है। इसके ढाँचे का ऊपरी भाग एक फुट से अधिक लम्बा तथा लगभग सात इंच व्यास का होता है। इसको जवा के द्वारा बजाया जाता है।

शंतूर

शंतूर का स्वरूप लगभग स्वरमंडल के समान होता है। शंतूर का वादन मुड़ी हुई डंडियों से गाने की संगति अथवा स्वतंत्र रूप से गत बजाने के लिए होता है। ये डंडियां ऊपर की ओर मुड़ी हुई, पतली, हल्की, सामान्य पेंसिल से भी कम मोटी होती हैं।

रबाब

रबाब वस्तुतः आधुनिक सरोद तथा सारंगी के मध्य का बाजा है। गज से बजने वाला रबाब लगभग सारंगी के समान और जवा से बजने वाला रबाब लगभग सरोद के समान होता है। कर्ट सेंक ने अपने ग्रंथ 'दि हिस्ट्री ऑफ़ म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेंट्स' पृष्ठ २५५ में अरब देशों में प्रचलित दो प्रकार के रबाब का वर्णन किया है। एक रबाब अस्सायर तथा दूसरा रबाब अलमोगन्नी। ये दोनों ही गज से बजने वाले तथा गायकों की संगत के लिए प्रयुक्त होने वाले हैं। तानसेन के वशंजों ने रबाब के जिस रूप को आजमाया वह चित्रा वीणा का परम्परानुरूप विकसित रूप था जिसके कारण उसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत का पूर्ण रूप से समावेश संभव हो सका। आगे चलकर इसी रबाब के दो नये रूप सामने आए जिनमें से एक को सुरसिंगार तथा दूसरे को सरोद कहा जाने लगा।

विचित्र वीणा

प्राचीनकाल में जिसे बृह्मवीणा, घोषिका, घोषवती, एकतंत्री वीणा आदि कहते थे उसी को आज विचित्र वीणा अर्थात् बट्टा बीन कहा जाता है। इसके ढ़ाँचे के मुख्य अंग दण्ड तथा तुम्बा हैं।

इस वाद्य का पंजाबी आंचल में स्थित पटियाला नामक स्थान से घनिष्ठ संबंध है। पटियाला में ही सुप्रसिद्ध वीणा वादक अब्दुल अज़ीज खाँ को विचित्र वीणा के आविष्कारक होने का गौरव प्रदान किया जाता है। विचित्र वीणा दो तुम्बों वाला वाद्य है जिसकी डांड पर चार मुख्य तार चढ़े होते हैं और नीचे तरब के तार होते हैं। इसका आकार कुछ ऐसा प्रतीत होता है जैसे दो घड़ों पर एक डांड रखी हो। इसकी डांड पर परदे भी बंधे होते हैं और तारों पर कांच के बट्टे के घर्षण से स्वर उत्पन्न किये जाते हैं। बायें हाथ में बट्टा होता है और दायें हाथ की अंगुलियों में दो–तीन मिज़रावें पहन कर तारों पर आघात किया जाता है।

सारंगी

सारंगी को मुगलकालीन साज कहा जाता है। इसमें सात तार प्रमुख होते हैं शेष छोटे–बड़े तारों का जाल सा पूरे वाद्य यंत्र में फैला रहता है, जिनसें मुख्य ध्वनि टकराती है और उन तारों की झनकार स्वर में ध्वन्यात्मक सौंदर्य उत्पन्न करती रहती है। मुख्य तारों में एक तांत भी होती है जो खरज की ध्वनि उत्पन्न करती है वादक इसे गोद में रखकर बजाता है तथा ऊपर के भाग को कंधे पर टिका लेते हैं। संगीत शास्त्रों में इसका प्रथम उल्लेख "संगीतराज" में प्राप्त होता है। यह लगभग दो फुट लम्बी होती है। इसमें तूम्बे के स्थान पर लकड़ी का बना हुआ पेट होता है, जो नीचे से चिपटा तथा ऊपर से डमरू के आकार का होता है। वह लकड़ी को खोद कर बनाया जाता है तथा चमढ़े से मढ़ दिया जाता है। सारंगी को कमान की सहायता से बजाया जाता है। बाँये हाथ की उंगलियों के नखों से ताँत को पार्श्व से स्पर्श कर इच्छानुसार स्वर उत्पन्न करते हैं।

क़ानून

कानून पर्शियन वाद्य है जो प्राचीन भारतीय महती वीणा, मत्तकोकिला वीणा अथवा स्वरमंडल के समान ही था। सामान्यतः स्वरमण्डल तथा कानून के बाह्य रूप में कोई अंतर नहीं है। अंतर केवल इनके तारों की संख्या में है। क़ानून के अट्ठाइस से अड़तीस तंत्रियाँ तक लगायी जाती हैं तथा इसका वादन डंडियों से शंतूर की भाँति होता है। क़ानून में प्रत्येक स्वर के लिए एक ही तार होता है। क़ानून का वादन कभी–कभी हाथ की उँगलियों से भी किया जाता है।

सुरसिंगार

सुरसिंगार वाद्य का वर्णन किसी संस्कृत ग्रंथ में उपलब्ध नहीं होता। इस वाद्य की परिकल्पना रबाब से हुई है। रबाब में जिस स्थान पर घुड़च रखी जाती है उस स्थान पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसी चमड़े के स्थान पर सुरबहार अथवा सितार के समान लकड़ी की तबली लगा

देने से उसकी ध्वनि तथा बनावट में जो सामान्य अंतर पड़ा उसी अंतर के कारण उसका नया नामकरण हुआ और उसे सुरबहार के जोडत्र में सुरसिंगार कहा जाने लगा।

सुषिर वाद्य

बाँसुरी

यह एक सुशिर वाद्य है। इसमें हवा के माध्यम से वांछित स्वरनिर्माण किये जाते हैं। इसके वेणु, बंशी, बांसुरी, मुरली आदि अनेक पर्याय पाये जाते हैं। बाँसुरी बाँस के पोले तथा बिना गाँठ के टुकड़े से बनाई जाती है। आज बाँस के स्थान पर लकड़ी, पीतल, लोहा तथा अन्य धातुओं से इसे बनाया जाता है। लोहे से बनी बाँसुरी जैसे वाद्य को आज 'अलगूजा' भी कहते हैं जिसका उपयोग महाराष्ट्र तथा मध्यप्रदेश में अनेक कीर्तनकारों के कीर्तनों में होता है।

हस्तद्वयाधिका माने मुखरन्ध्रसमन्विता।
चतुःस्वरच्छिद्रयुता मुरली चारूनांदिनी।।"

–संगीत रत्नाकर, ६।७८६

महाकवि कालिदास ने 'कुमारसंभव' में बंशी के जन्म संबंधी एक सुन्दर कल्पना की है –

"यः पूरयन् की चकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम्।।"

– कुमारसंभव, १।८

बाँसुरी की लम्बाई एक से सवा फीट होती है और इसका पोला घेरा लगभग ३/४ से एक इंच रखा जाता है। इसमें ७ छिद्र होते हैं। बाँसुरी को अंगुलियों से छिद्रों को पूरा बंद करके या आधा बंद करके फूंक द्वारा स्वर निकाले जाते हैं।

नफ़ीरी

नफ़ीरी को सहनाई या सुन्दरी भी कहते हैं इसका शुद्ध नाम है शहनाई। यह एक हाथ लम्बी लाल चंदन की लकड़ी की बनी होती है, जिसमें आठ छेद होते हैं। इसका मुख चार अंगुल लम्बा होता है जिसमें हाथी दाँत के पत्ते लगे रहते हैं। इन्हें मुख में दबाकर फूंक के माध्यम से मधुर स्वर बजाये जाते हैं। इसलिये इसे सुनादी भी कहते हैं। दक्षिण में इसके अनेक आकार–प्रकार मिलते हैं। वहाँ इसके कुछ लम्बे रूप को 'नागस्वरम्' के नाम से जाना जाता है।

शहनाई

यह वाद्य मुसलिम संस्कृति की देन है ऐसा माना जाता है। शायद इसीलिए संस्कृत ग्रंथों में इसका नाम नहीं मिलता। कीर्तन साहित्य में शहनाई का उल्लेख विशेष रूप से होली प्रसंग में मिलता है। यथा –

"मोहन संग ड़फ दुंदुभी, शहनाई सरन पुनि राजैं"

– कीर्तन संग्रह (बसंत धमार) – भाग २

शहनाई लगभग एक हाथ लम्बी लाल चंदन की बनी होती है। आधे बेर के बीज के आकार वाले एक–एक अंगूठे के अंतर पर आठ छिद्र होते हैं। इसका मुख चार अंगुल का होता है, जिसमें स्वर उत्पन्न करनें वाले दो इमली के पत्ते लगे रहते हैं।

मदन भेरि, राय गिड़गिड़ी, सहनाई सुर सोहै।

– कृष्णदास

कुछ लोगों का मत है कि शहनाई ईरानी वाद्य है। उनका कहना है कि इसका वास्तविक नाम शाहेनय है। नय अर्थात् फूँक से बजने वाला बाजा, शाह अर्थात बादशाह। तात्पर्य है कि शहनाई फूँक से बजने वाले समस्त वाद्यों का बादशाह है। शहनाई, नफीरी, नागस्वरम् जो शहनाई के ही छोटे–बड़े रूप हैं, हमारे देश में मांगलिक वाद्य माने जाते हैं।

हारमोनियम

हारमोनियम एक ऐसा वाद्य है जिसकी संगत गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं के साथ की जाती है। यह हवा के माध्यम से बजाया जाता है तथा इसकी आकृति संदूक की तरह घनाकार होती है। इस वाद्य को बायें हाथ से धौकनी देते हुए दाहिने हाथ की अंगुलियों से रीड़ पर स्वर निकालकर बजाया जाता है। इसमें चारों अंगुलियों और अंगूठे का प्रयोग किया जाता है। मुख्यतया नीचे और ऊपर के स्वरों में रंग भिन्न होते हैं ताकि ऊपर नीचे के स्वर पहचाने जा सकें। नीचे के सफेद बाईस और ऊपर के काले पंद्रह रीड़ होते हैं। यह वाद्य गीत, गज़ल, भजन आदि गायन शैलियों और शास्त्रीय गायन में संगत के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

क्लोरोनेट

यह अंग्रेजी बैंड का मुख्य वाद्य है। यह भारतीय शहनाई की भाँति बजाया जाता है। इसके छेदों पर चाबियाँ ढ़की रहती हैं जिन्हें अंगुली के दबाव से वादक खोलता बंद करता है। ऊपर की ओर से वादक इसमें फूँक मारता है तथा ऊपर शहनाई की भाँति पत्ता लगा रहता है।

अवनद्ध वाद्य

तबला

यह अवनद्ध वाद्य है। कहते हैं कि अमीर खुसरो ने इसका आविष्कार किया। शास्त्रीय संगीत में जब ख्याल नामक गीत प्रकार प्रचलित हुआ तब तबला उस गीत प्रबंध के साथ बजाया जाने लगा। इसमें दो विभिन्न प्रकार के उपकरण तबला तथा डग्गा अथवा दायां, बायां उपयोग में आते हैं। डग्गा का अंग खोड़ प्रायः बीजासार, शीशम, खैर, आम, बबूल, नीम आदि वृक्षों के तने से बनाया जाता है।

प्रारंभ में तबले के दाहिने भाग पर ही स्याही लगाई जाती थी और बांए डग्गे पर गीले आटे की पूलिका लगाई जाती थी। ऐसी स्थिति में तबले वाद्य पर, ढ़ोलक पर बजने वाले उन बोलों को जो कि अंगुलियों को मोड़कर और हथेली को चमड़ें पर घिसकर गमक की भांति बजाये जाते हैं, बजाना मुश्किल था। इस प्रकार के बोलों को बजाने के लिए सिद्धार खाँ ने बाएं डग्गे पर भी आंटे की पूलिका के स्थान पर न छूटने वाली दांए जैसी पक्की स्याही लगा दी। इस प्रकार तबले पर मृदंग और ढ़ोलक दोनों पर बजने वाले बोल आज सरलता से बजाए जाते हैं।

खोल

मणीपुरी नृत्य में प्रयुक्त होने वाला अवनद्ध वाद्य खोल एक सुंदर वाद्य है। मणीपुरी नृत्य के अतिरिक्त इसका प्रयोग चैतन्य महाप्रमु के परम्परानुयायी कृष्ण भक्त कीर्तन के समय करते हैं। इसका रूप महर्षि भरत द्वारा

वर्णित यवाकृति मृदंग के समान होता है। चैतन्य महाप्रभु के जीवनकाल में यह वाद्य बंगाल में प्रचलित था। इसका ढ़ाँचा पकी हुई मिट्टी का होता है। इसका दक्षिण मुख साढ़े तीन इंच व्यास का तथा वाम मुख साढ़े सात इंच व्यास तक का होता है। यह भीतर से खोखला होता है। इसके दोनों मुख तबले अथवा मृदंग की भाँति मढ़े जाते हैं जो कि चमड़े की बद्धी से कसे रहते हैं।

मृदंग

सुधाकलश ने भगवान शंकर को मृदंग या मुरज का आविष्कारक बताया है। रामायण में मृदंग तथा मुरज का अलग–अलग नाम दिया गया है। कालिदास के साहित्य में मर्दल, मुरज तथा मृदंग इन तीनों का उल्लेख स्थान–स्थान पर हुआ है। शारंगदेव ने मुरज तथा मर्दल को मृदंग का पर्याय बताया है। अभिनव गुप्ताचार्य ने भी मुरज को मृदंग का पर्याय बताया है। स्वयं महर्षि भरत ने चौंतीसवे अध्याय में एक स्थान पर कहा है कि सुख प्रदान करने वाली मांगलिक होने के कारण इसे मृदंग कहते हैं, मुलायम मिट्टी से बनी हुई होने के कारण इसे मुरज कहते हैं, भ्रमण करने वाली होने के कारण इसे माण्ड कहते हैं तथा पीट कर बजायी जाने के कारण इसे आतोद्य कहते हैं। मृदंग के दोनों मुँह चमड़े से मढ़े रहते हैं। इसे खड़े होकर गले में ड़ालकर अथवा बैठकर सामने रखकर दोनों हाथों से बजाते हैं।

ढ़ोलक

यह ढ़ोल की भाँति छोटे आकार की होती है जिसे दोनों हाथों से बजाया जाता है। मांगलिक पर्वों पर स्त्रियों के गीत प्रायः ढ़ोलक की ताल पर ही गाए जाते हैं। यह आम, बीजा, शीशम, सागौन, नीम, जामुन और अढ़ैसा की लकड़ी से बनती है। यह अंदर से पोली तथा दोनों मुख पर बकरे की खाल मढ़ी होती है, जिसे डोरियों से छल्लों के द्वारा कसा जाता है। ढ़ोलक का दाहिना मुख ऊँचे स्वर में तथा बांया मुख मंद्र स्वर में बोलता है। बांया मुख मोटी खाल से मढ़ा जाता है जिसमें भीतर से एक विशेष प्रकार का लेप किया जाता है।

पखावज

विद्वानों के अनुसार एक ही वाद्य को दक्षिण में मृदंग और उत्तर में पखावज की संज्ञा दी गई है। एक विद्वान के अनुसार पंजाब में केवल पखावज अथवा मृदंग ही कीर्तन के कामों में प्रयुक्त होते थे। गुरू ग्रंथ साहिब में पखावज वाद्य के प्रसंग में गुरूनानक देव जी द्वारा रचित निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं –

बाजा मति पखावज भाउ।।
होई आनंदु सदा मनि चाउ।।

श्री टी. एन. मुकर्जी ने मृदंग व पखावज के आकार में कुछ अंतर स्थापित किया था और कहा था कि पखावज मृदंग से आकार में कुछ बड़ी होती है। पोपले ने श्री मुखर्जी का ही समर्थन किया और पखावज को उत्तर भारत में तथा मृदंग को दक्षिण भारत में प्रचलित वाद्य बताया है। यह वाद्य लगभग दो फिट लम्बा व दो मुख वाला होता है। इसके पेट की परिधी दो फिट अधिक होती है। दोनों मुख चमड़े से मढ़े होते हैं तथा चमड़े के तस्यों से कसे रहते हैं।

श्रीखोल

श्री चैतन्यदेव के समय से कीर्तन गान के अनुसंगी वाद्य के रूप में श्रीखोल प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति बंगाल में हुई। आजकल आसाम, मणिपुर एवं अन्य स्थानों में भी यह बहुत प्रचलित है। यह प्राचीन मृदंग (पुष्कर) के समान ही होता है। इसे बैठकर या खड़े होकर ढ़ोलक के समान बजाया जाता है। कीर्तन के अतिरिक्त आजकल यह रवींद्र संगीत, लोकसंगीत आदि के साथ भी बजाया जाता है। ढ़ाई–तीन फुट लम्बा मिट्टी से निर्मित यह वाद्य मध्यभाग से थोड़ा मोटा होता है। दाहिने मुख का व्यास ३–४ इंच एवं बायीं ओर के मुख का व्यास इससे लगभग दुगुना होता है। यह चमड़े से मढ़ा चमड़े की द्वाली (फीता) द्वारा ही कसा रहता है।

दुक्कड़

छोटी–छोटी दो नगड़ियाँ जो शहनाई के साथ ताल वादन के लिए प्रयुक्त होती है। इनका मुख चौड़ा तथा नीचे का भाग सामान्य नुकीला होता है। इनका ढ़ाँचा मिट्टी का होता है। इसमें बायें भाग में मोटी खाल तथा दाहिने भाग में पतली खाल मढ़ी जाती है। इन्हें चमड़े की जालदार डोरियों से कसा जाता है। इनकी वादन विधि तबले के समान होती हैं तथा इसमें तबला के बोल ही बजाए जाते हैं।

घनवाद्य

मटका

पानी रखने वाला या दाल पकाने वाला मिट्टी का बड़ा मटका तालवाद्य है, जिसका सबसे अधिक प्रचार दक्षिण भारत में है। मटके को गोद में रखकर दोनों हाथों की अंगुलियों तथा हथेलियों के आघात से वादन किया जाता है। दक्षिण भारत में यह 'घटम्' के नाम से शास्त्रीय वाद्यों की श्रेणीं में गिना जाता है।

ताल

ताल एक प्रकार का मंजीरा ही है किंतु इसका आकार सामान्य मंजीरे से बड़ा होता है। प्राचीन काल में मृदंग आदि वाद्यों में किसी ताल का ठेका बजाने का रिवाज नहीं था। वाद्यों के अपने बोल होते थे उन्हीं को गान अथवा वादन के अनुकरण में या स्वतंत्र रूप से बजाते थे। ऐसी स्थिति में गायक, वीणावादक अथवा मृदंगवादक जिस ताल में गान अथवा वादन करता था उस ताल विशेष में लगने वाली विभिन्न ताली तथा खालियों के स्थानों का यथावत् ध्यान रखने का कोई उपाय न था। गायक प्रायः अपने हाथ से ताल देता था, किंतु वीणावादक के लिए यह संभव नहीं था। अतः ताल नामक घन वाद्य से यह कार्य लिया जाने लगा जो कि ताल को धारण करने वाला था और 'ताल' कहलाया जाने लगा।

ताल वाद्य का उल्लेख मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर, संगीत पारिजात, संगीतसार, वाद्य–प्रकाश आदि ग्रंथों में प्राप्त होता है, जिनके अनुसार इसका सामान्य रूप निम्नवत् था। ताल वाद्य अग्नि में शुद्ध किये हुए काँसे से बनाया जाता था जो दो हिस्सों में होता था। ये दोनों भाग छः अंगुल व्यास के गोल काँसे के बने हुए, बीच से दो अंगुल गहरे होते थे। मध्य में छेद होता था। इन छेदों में डोरी डालकर भीतर से गाँठ लगा दी जाती थी जिससे

डोरी निकलने न पाए और दोनों हाथों से परस्पर आघात द्वारा बजाया जाता था। 'संगीत–दामोदर' में ताल को ही करताल मानते हुए लिखा है कि वह शुद्ध काँसे का बना हुआ तेरह अँगुल परिधि वाला, बीच में स्तनाकार होता है और उसके बीच में डोरी लगी होती है। वह दोनों हाथों से बजाया जाता है। बृज में इसे 'राय–गिड़गिडी' या गिड़गिड़ी भी कहते हैं।

"मदन भेरि–राय गिड़गिड़ी सहनाई सुर सोहे।"

घुँघरू

धातु के पोले गोल टुकडे घुंघरू कहलाते हैं, जिनके अन्दर लोहे या कंकड की छोटी–छोटी गुटिकाएँ डाल दी जाती हैं। बहुत सारे घुँघरूओं को इकट्ठा करके किसी डोरी से बाँधकर एक लड़ी बना ली जाती है। इसी लड़ी को पैरों में बाँधकर नर्तक लोग नृत्य करते हैं। कुछ लोग तबला वादन के समय एक हाथ में घुँघरू बाँधकर इस तरह वादन करते हैं मानों दो व्यक्ति अलग–अलग बजा रहें हों। शास्त्रीय नृत्य कत्थक, भरतनाट्यम आदि में घुँघरू के बिना ताल में वजन नहीं आता है। वहाँ यह महत्वपूवर्ण स्थान रखते हैं।

जलतरंग

इसमें छोटे बड़े क्रम से प्यालों को लिया जाता है तथा उनमें पानी भरकर लकड़ी के टुकड़ो से टंकोरा जाता है। ऐसा करने से प्यालों में जल की तरंगे उठती हैं और स्वर की तरंगों में विलीन हो जाती हैं। अतः इस वाद्य को जलतरंग कहते हैं।

निष्कर्ष

वाद्यों की परंपरा का विकास, वाद्यों का निरंतर विकास होते जाने के साथ ही होता गया। नये वाद्य निर्मित होते गए हैं, पुराने अपने प्रयोग में शिथिल होते गए हैं, फिर भी सबकी अपनी अलग–अलग परंपरा भी है और एक–साथ भी। इस प्रकार संगीत के मूल तत्व की दृष्टि से, स्वतंत्र कला की दृष्टि से, दूसरी कलाओं को निखार प्रदान करने की दृष्टि से, सामाजिक–धार्मिक रूप में प्रतीकात्मकता की दृष्टि से, स्वरों के विश्लेषणात्मक कार्यों की दृष्टि से वाद्य कला जितनी अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक है उतनी अन्य कोई कला नहीं है। वाद्यों में धुन वादन में मिश्रित रागों का रुप देखने को मिलता है। शास्त्रीय वाद्य वादन में वादक अपनी धुन कण, खटका, मुर्की, मींड, घसीट, जमजमा, आदि का प्रयोग करते हुए उसे विषेष छोटे–छोटे टुकडों से सजाकर श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है। बाबा अलाउद्दिन के अनुसार '' यदि वाद्य गा ही नहीं सकता तो वो वाद्य ही क्या।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *संगीत निबंध संग्रह – हरिश्चंद्र श्रीवास्तव–पृ0सं0– 111,112*
2 *गीत वाद्य निधि – प्रो. तजम्मुल खान–पृ0सं0 – 13,96*
3 *संगीत विशारद – बसंत–पृ0सं0 – 578,580,583,658*
4 *संगीत शास्त्र पराग – गोविंद राव राजुरकर – पृ0 सं0 –193,194,200,204,207,208*
5 *संगीतायन – अमल दास शर्मा–पृ0 सं0– 158,164*
6 *भारतीय संगीत वाद्य – लालमणि मिश्र – पृ0 सं0 – 51,116,117,124,127,130,140,*
7 *बृज की संगीत परम्परा – डॉ. वंदना सिंह – पृ0 सं0 – 89,90*
8 *संगीतसार में कहा है कि यह रूद्र वीणा शिव जी को बहुत प्रिय है, इसलिए इसे रूद्रवीणा कहते हैं। – संगीतसार – वाद्याध्याय।*
9 *बृज संस्कृति में संगीत – अंजू शर्मा – पृ0 सं0 – 204,209*
10 *कल्लिनाथ, संगीत रत्नाकर टीका – पृ0 सं0 – 248*
11 *पंजाब की संगीत परम्परा – गीता पैन्टल – पृ0 सं0 – 287,288,295*
12 *गुरमत संगीत – चीफ खालसा दीवान द्वारा प्रकाशित प्रथम भाग*
13 *डॉ. सुशील कुमार चौबे – हिंन्दुस्तानी संगीत के रत्न – पृ0 सं0 – 255*
14 *कला शिक्षा – अनिल कुमार शर्मा, मूलचंद्र शर्मा – पृ0 सं0 – 64*
15 *कला शिक्षा 'संदर्शिका' – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर*
16 *हिंन्दुस्तानी संगीत शास्त्र (भाग–२) – प्रो. भगवत शरण शर्मा – पृ0 सं0 – 51,53*
17 *नृत्तेन चापराः क्लान्ताः पानविप्राहतास्तथा। मुरजेषु मृदङ्गेषु, पीठिकासु च संस्थिताः।। ५–६।।(सुन्दरकाण्ड, सर्ग ११)*
18 *निगदन्ति मृदङ्गं तं मर्दलं मुरजं तथा। प्रोक्तं मृदङ्गशब्देन् मुनिना पुष्करत्रयम्।।१०२७ – संगीत रत्नाकार, वाद्याध्याय। एवं विधलक्षणयुक्त मृदङ्गमाहुः। तस्यैव पर्यायो मर्दलमुरजाविति।। (सुन्दरकाण्ड, टीका)– संगीत रत्नाकर*
19 *प्रोक्तमिति मुनिना भरतेन पुष्करत्रययुक्तम्।। – संगीत रत्नाकर वाद्याध्याय*
20 *मुर (रा) सुपधिषताश्च (सूपधिष्ठिता च) श्लक्ष्म (क्ष्ण) सुकुमारायां सृदि प्ररोहतीति मृदपि मुरा। ततो जाता मुरजा मृदंगा इत्यर्थः। – नाट्यशास्त्र, ३४ अध्याय*
21 *आतोद्यं तोदनात्।– अभिनव गुप्ताचार्य – नाट्यशास्त्र*
22 Dr. A.S. Paintal – The Nature and place of Music
23 *गुरू ग्रंथ साहिब – राग आसा महला १, चौपदे घरू २ – पृ0 सं0 – 330*
24 *आर्ट मैन्यूफैक्चर्स ऑफ इंडिया– पृ0 सं0 – 93*
25 *म्यूज़िक ऑफ इंडिया – एच. ए. पोपले, पृ0 सं0 – 125*
26 *संगीतायन – अमल दास शर्मा*
27 *कार्यमस्यस्यात्ताल – धारणम्।। (६।११८०) – संगीत रत्नाकर, कल्लिनाथ, वाद्याध्याय*
28 *संगीत निबन्धावली–डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग पृ0सं0– 109*
29 *सांगीतिक निबन्ध माला –डा0 सीमा जौहर, पृ0 सं0 – 57,62,67,68,71*